# महिलाओं में राजनैतिक सशक्तिकरण का प्रगति–विश्लेषण

**गीता सिंह***

महिलाओं की प्रस्थिति के ऐतिहासिक स्वरूप पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति श्रेष्ठ थी। पिता का परिवार हो या पति का परिवार दोनों ही स्थानों पर उन्हें वांछित सम्मान प्राप्त था। यद्यपि पितृ सत्तात्मक परिवार व्यवस्था के कारण पुत्र संतान अनिवार्य व महत्वपूर्ण था परन्तु कन्या जन्म भी अशुभ नहीं माना जाता था, विवाह के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति और भी अच्छी हो जाती थी। इस युग में स्त्रियों को समृद्धि की देवी समझा जाता था और उनके सम्मान करने पर जोर दिया जाता था। धार्मिक कार्यों में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान ही महत्व दिये जाने के कारण पत्नी को सहधर्मिणी कहा जाता था। धार्मिक सभाओं में वाद–विवाद का भी उन्हें अधिकार था। वैवाहिक अधिकारों के संबंध में स्वयंवर प्रथा के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि कन्या को स्वयं अपने जीवन साथी के चुनाव का अधिकार प्राप्त था। यद्यपि विधवा पुनर्विवाह प्रचलित नहीं था लेकिन विधवाओं के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाता था और उन्हें अपने पति की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त था।[1]

ईसा के 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक का युग उत्तर वैदिक काल कहा जाता है। इस काल में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ और यह विचार पनपने लगा कि बौद्धिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से निम्न है। महाभारत में उल्लिखित उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि महिलाओं के प्रति वैचारिक मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा था, परन्तु सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में अभी भी महिलाओं के अधिकारों को कम नहीं किया गया था। हेमाद्रि ने शिक्षित अविवाहित कन्याओं को 'विदूषी' कहा और बताया कि ऐसी कन्याओं का विवाह बराबर के शिक्षित वर, जिसे 'मनीषी' कहते थे, से ही किया जाना चाहिए।[2]

धार्मिक साहित्य आपस्तम्ब ने निर्दिष्ट किया था, 'जब स्त्री रास्ते में जा रही हो तो सभी उसे रास्ता दें।'[3] मनु ने कहा था कि, 'जहाँ स्त्रियों की दुर्दशा होती है वहाँ सम्पूर्ण परिवार विनाश को प्राप्त होता है, किन्तु जहाँ वे सुखी हों, वहाँ परिवार सदैव

**राजनीति विज्ञान विभाग शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय (उत्कृष्टता केन्द्र) रीवा (म0प्र0)**



समृद्धि को प्राप्त करता है।' वेद में विवाह संस्कार के समय कहे जाने वाले मंत्र का उल्लेख मिलता है –

सुन्माइयोथि श्वयुरेष सन्भायुत देवृषु।
ननान्दुः सन्भाइयोदि सन्ताइयुत श्वश्रुष।।[4]

अर्थात् – हे नववधु, तू जिस नवीन घर में जाने लगी हो वहाँ भी तू साम्राज्ञी हो वह सब तेरा हो, तेरे श्वसुर, देवर, ननद और सास तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे राज्य में आनन्दित रहें।

महाभारत के आदि पर्व में कहा गया है कि 'मृदुभाषी पत्नियाँ सुख में अपने पति की मित्र होती हैं, धार्मिक कृत्यों के समय वे उनके पिता के समान होती हैं तथा दुःख व कष्ट के समय वे उनकी माता के समान होती हैं।' मनु ने कहा था–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।
अपूजिताश्च यत्रेता, सर्वास्तित्राफला क्रियाः।।[5]

स्त्रियों के विषय में इतने ऊँचे आदर्श रामायण एवं महाभारत में भी स्थान–स्थान पर दोहराये गये हैं। महाभारत काल में स्त्रियाँ न केवल गृहस्थ जीवन का केन्द्र थीं, बल्कि समस्त सामाजिक संगठन की आधार बिन्दु थीं। ऐसी आशा की जाती थी कि पुरुष अपनी पत्नी की इच्छा के आगे नत होगा तथा उसकी सेवा व पूजा करेगा।

यह चित्र का एक पक्ष है इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि स्त्रियों को कमजोर मनवाली मानकर उन्हें विश्वास के योग्य नहीं समझा जाता था। उन्हें पुरुषों की शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति का साधन माना जाता था तथा उनके लिए संतान प्राप्ति का साधन भी। महाभारत में एक स्थल पर कहा गया है कि 'स्त्री से अधिक पाप की अन्य कोई वस्तु नहीं है।' स्त्री सभी बुराइयों की जड़ है, कोई भी जीवधारी इतना पापी नहीं होता जितनी स्त्री। स्त्री प्रज्ज्वलित ज्वाला है, वह माया रचित एक भ्रम है, वह उस्तरे की तेज धार है, वह अग्नि है।'[6] रामायण में कहा गया है कि 'स्त्रियों के मुख पुरुषों की भाँति हैं, उनके शब्द मधु की बूंदों की भाँति हैं, किन्तु उनके मन तेज उस्तरे की भाँति है, उनके मन की थाह किसी की भी नहीं हो सकती है।'

उपरोक्त उद्धरणों के अनुसार, जिस प्रकार मनु स्त्रियों को आधिपत्य की वस्तु मानना चाहते थे, जिस प्रकार सीता को वनवास दिया गया था तथा जिस प्रकार युधिष्ठिर द्वारा द्यूत क्रीड़ा में द्रौपदी को दाँव पर लगाया गया था, उससे तो यही सिद्ध होता है कि सभ्यता के प्रारंभिक दौर में स्त्रियों को गुलाम तथा मूल्यवान प्रतिभूति ही माना जाता था।

वस्तुतः इस काल में स्त्रियों की स्थिति काफी अच्छी थी और उन्हें जीने के तमाम अधिकार प्राप्त थे। हालांकि स्मृति और पौराणिक काल तक आते–आते स्त्रियों की स्थिति और गरिमा का पतन होने लगा था, उनके तमाम अधिकारों का पतन होने लगा था, उनके तमाम अधिकार छीन लिए गये और उन पर अनेकानेक अमानवीय निर्योग्यताएँ लाद दी गईं।

11वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के काल को मध्यकाल कहा जा सकता है। वास्तव में इस काल में स्त्रियों की स्थिति में जितना ह्रास हुआ उसे भुलाया नहीं जा सकता। भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था और यहाँ मुगल साम्राज्य की पताका फहरा रही थी। यों इस काल तक आते–आते नारी बाल्यकाल में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्रों के संरक्षण में रहने की आदी बन चुकी थी। उसे अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। और वह परिवार की एक आवश्यकता मात्र बनकर रह गई थी। हालांकि बौद्ध धर्म के उदय से उसकी स्थिति में कुछ सुधार हुआ भी, परन्तु मुगल काल में नारी की दशा और भी दयनीय हो गई। परदा प्रथा ने नारी को घर की चार दीवारी की कैद में रहने के लिए मजबूर कर दिया। बाल विवाहों का बाहुल्य हो गया तथा उसकी आवाज चिता के चारों ओर बजते ढोल नगाड़ों में दब कर रह गई।[7] सती प्रथा के अतिरिक्त यह ऐसा भी समय था कि राजपूत नारियाँ अपने पतियों के जिंदा नहीं लौटने पर 'जौहर प्रथा' का प्रयोग किया करती थीं और अब यह केवल इस डर से किया जाता था कि यदि मुगल शत्रुओं अथवा आक्रमणकारियों के हाथों पड़ गई तो अपमानित होना पड़ेगा। वस्तुतः मध्यकाल में स्त्रियों की स्वतंत्रता सब प्रकार से छीन ली गई और उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुषों के अधीन कर दिया गया।

आधुनिक काल पर दृष्टि डालें तो, भारत में 1940 तक (ब्रिटिश शासनकाल) स्त्रियों की एकान्तता तथा उनके निम्न स्तर के लिए हिन्दू धर्म, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवादी उत्तरदायी हैं वस्तुतः इस काल में स्त्रियों की विभिन्न क्षेत्रों में निर्योग्यताएँ बनी रहीं, अंग्रेज शासकों ने भी स्वेच्छा से हिन्दुओं के सामाजिक विधानों में बाधा पैदा करने की कोशिश नहीं की।

19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में कुछ भारतीय समाज सुधारकों यथा राजा राममोहन राय, केशव चन्द्रसेन, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गाँधी आदि के प्रयत्नों से बाल विवाह और सती प्रथा रोकने, विवाह और सम्पत्ति में स्त्रियों को अधिकार प्रदान करने तथा उन्हें शिक्षित और जागरूक बनाने हेतु कुछ सामाजिक और वैधानिक प्रयास किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1950 के बाद से स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार के परिवर्तनों ने स्त्रियों



को न केवल शिक्षा, रोजगार तथा राजनीतिक भागीदारी में समान अवसर प्रदान किये हैं, बल्कि स्त्रियों के शोषण को भी कम किया है तथा उन्हें अपने संगठन बनाने के लिए अवसर प्रदान किए हैं, जिनसे वे अपनी समस्याओं में अधिक रूचि ले सकें।[8]

1917 में मद्रास में श्रीमती मार्ग्रेट कजिंस ने अखिल भारतीय स्तर के प्रथम महिला संगठन 'इंडियन वीमेंस एसोसिएशन' की स्थापना की। उसी वर्ष के अंत में श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं का एक शिष्टमंडल श्री मांटेग्यू, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया से मिला और महिला–मताधिकार की मांग की, जिसके छह वर्ष बाद ही भारतीय स्त्रियों को यह अधिकार मिल गया, जबकि इंग्लैण्ड की स्त्रियों को इसके लिए अस्सी वर्ष लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। उसी वर्ष राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर डॉ. एनी बेसेंट 'पहली महिला' के रूप में आसीन हुई थीं। भारतीय राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने का स्त्रियों का यह प्रथम अवसर था और इस जागृति के प्रेरक थे स्वयं गांधीजी।

भारत का 'नारी–मुक्ति–संघर्ष' के 'वीमेंस लिब' आंदोलन से एकदम भिन्न रहा है। पुरुषों के सहयोग से किए गए संघर्ष के फलस्वरूप भारतीय स्त्रियों को आजादी के तुरंत बाद बराबरी के संवैधानिक अधिकार मिल गए। आजादी के बाद इन अधिकारों को सामाजिक अधिकारों में बदलने के लिए भी उसी तरह साझी लड़ाई लड़ी जाती तो न उन्हें पुरुष–प्रतिद्वंद्विता में पड़कर उनका कोप झेलना पड़ता, न इस कदर स्त्री–शोषण ही बढ़ता।[9]

राजनीति और शासन में स्त्रियों की भागीदारी संभवतः प्रागैतिहासिक काल में जितनी रही, उतनी बाद में किसी भी काल में नहीं, भारत में देवी–पूजन की परंपरा इस बात को सिद्ध करती है। लेकिन यह एक तथ्य है कि कोई भी युग कमोवेश इस भागीदारी से अछूता नहीं रहा। बेशक राजनीति–कूटनीति में चाणक्य जैसा कोई महिला–नाम नहीं उभरा, पर सीधे शासन हो या शासन–मंत्रणा, भारतीय स्त्री की सूझबूझ, दूरदृष्टि और कुशल प्रशासन–क्षमता के प्रशंसित–प्रमाण यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

मातृसत्तात्मक समाज–व्यवस्था में स्त्री ही कबीले की मुखिया रही। आज भी कुछ आदिवासी कबीलों में स्त्रियों का शासन देखा जा सकता है, यद्यपि मातृसत्तात्मक कबीलों में भी सभी जगह यह आवश्यक नहीं कि सब अधिकार स्त्रियों के पास ही हों।

हमारी पौराणिक देवियों और खुदाई से प्राप्त नारी–मूर्तियों में बलशाली रानी–महारानी, शासिका नारी के दर्शन होते हैं। वैदिक सभ्यता पुरुष–प्रधान सभ्यता रही, पर स्त्रियों के शासिका, सेनानी, राज्य–सलाहकार या मंत्राणी, विदुषी समाज–नेत्री, पुरोहितिन आदि सभी रूपों का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है।

रामायण, महाभारत काल के साहित्य में कई स्त्री–राज्यों का वर्णन है। रावण ने नारद के उकसाने पर श्वेत द्वीप के स्त्री–राज्य पर आक्रमण किया। उस द्वीप पर कोई कार्यकारी पुरुष न था, फिर भी रावण को मुंह की खानी पड़ी थी। कैकेयी राजा दशरथ की विदुषी रानी/मंत्राणी थी और पति के साथ रणक्षेत्र में भी जाकर सन्मुख युद्ध में भाग लेती थी। पांडवों ने जब अश्वमेध यज्ञ किया तो हिमालय–स्थित एक स्त्री–राज्य की रानी प्रमिला ने घोड़ा पकड़कर अर्जुन से युद्ध किया था। प्रमिला को हराने में असफल रहने पर ही अर्जुन को तत्कालीन युद्ध–नीति का सहारा ले, प्रमिला से विवाह करना पड़ा था।

पौराणिक या प्रागैतिहासिक काल की सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा जैसी देवियों को एक ओर पूजन–स्थल पर ही रखकर देखें तो भारत के इतिहास में वैदिक काल की अपाला, घोषा, वाक्, सूर्या, सावित्री जैसी मंत्रद्रष्टा ऋषिकाएं, उपनिषद् काल की गार्गी, मैत्री जैसी विदुषियां, मध्यकाल व पूर्व–आधुनिक काल की अहिल्याबाई होल्कर, रजिया बेगम जैसी शासक और चांदबीबी, लक्ष्मीबाई जैसी वीर स्त्रियां अपनी गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं।

मध्यकाल में सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय पंजाब में रावी नदी के किनारे अश्वलायन राज्य की स्त्री शासिका कृपि रानी ने सिकंदर का डटकर मुकाबला किया था और नौ दिन के घमासान युद्ध में यूनानी सेना को अपार क्षति पहुंचाने के बाद ही उसने हार मानी थी। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय पाटन पर राजमाता नायकी देवह शासन कर रही थीं, जिन्होंने आक्रमण का मुकाबला किया। मुगलकालीन इतिहास तो गोंडवाना की रानी दुर्गावती, चित्तौड़ की महारानी कर्मदेवी, मेवाड़ की रानी कर्णदेवी, छत्रपति शिवाजी की पुत्रवधू–मराठवाड़े की राजमाता ताराबाई जैसी योग्य शासिकाओं और वीर सेनानी स्त्रियों की गौरव–गाथाओं से भरा पड़ा है। अंग्रेजों से लोहा लेने वाली कित्तूर की रानी चेनम्पा और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को कौन भूल सकता है। रजिया बेगम, चांदबीबी, अहल्याबाई होल्कर के शासन और शौर्य की कहानियां हर स्कूल में बच्चों को पढ़ाई जा रही हैं। आज केरल में जो साक्षरता–दर भारत में सभी राज्यों से अधिक है, उसका श्रेय भी त्रावणकोर (केरल) की एक शासिका रानी गौरी पार्वती बाई के सु–शासन को ही जाता है। प्राचीनकाल की अधिकार–संपन्न भारतीय नारी मध्यकाल के बाद 19वीं शताब्दी तक आते–आते लगभग पूरी तरह अधिकारविहीन व पर–निर्भर हो चुकी थीं।

**सन्दर्भ :**


1 तिवारी, आर.पी. एवं डी.पी.शुक्ला (1999): भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, पृ. 30.





2 तिवारी, आर.पी. एवं डी.पी.शुक्ला (1999): भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, पृ. 30–31.

3 मनुस्मृति, 2.7.

4 रामायण, 109.

5 महाभारत, अनुशासनपर्व, 46.5–6.

6 इंदिरा (1951): प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति, बम्बई, पृ. 12–13.

7 तिवारी आर.पी. एवं डी.पी.शुक्ला : मध्यकालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, पृ. 1–12.

8 शुक्ला डी.पी. एवं उषा शुक्ला (1999): भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, पृ. 137.

9 व्होरा, आशारानी (2011), औरत कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, कवर पृष्ठ.


****